वर्ष : 8 • अंक : 29 • जुलाई-सितम्बर 2021 • ISSN 2347-6605

वाक् सुधा

VAAK SUDHA

(अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

(International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

(A Scholarly Peer Reviewed Journal)

विशेष सूचना :

विचार की प्रतिबद्धता में राष्ट्रहित सर्वोपरि है।

रूपेश कुमार चौहान

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक

द्वारा 47, ब्लॉक ए-3, गली नं. 5, धर्मपुरा एक्सटेंशन, दिल्ली-43 से प्रकाशित एवं डॉल्फिन प्रिंटोग्राफिक्स, 4ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान् एक्सटेंशन, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

दूरभाष संख्या-09555222747, 9267944100, 9555666907

Email: vaaksudha@gmail.com • Website : www.vsirj.com

डॉ. संगीता रानी

लोकजीवन का कवि कबीर

मध्यकालीन समाज की चर्चा जब भी होती है तो सामंती समाज की संरचना और उसके ढकोसलों की चर्चा भी अनिवार्यत: होती है। फिर इसी मध्यकाल के अंतर्गत भक्तिकाल की बात होती है तो भक्त कवियों जायसी, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा आदि की भी चर्चा होती है। यहाँ प्रश्न यह भी आता है कि धार्मिक बाह्याचारों, अंधविश्वासों और सामंती आतंक में फँसे समाज में लोगों की समझ, ज्ञान का स्तर कैसा था? इसका जवाब प्राय: नकरात्मक रूप में ही होता है। यह मान लिया जाता है कि विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों, अज्ञानता और धार्मिक, सामाजिक भेदभाव में बंटे समाज से आखिर अपेक्षा और हो भी क्या सकती थी? लेकिन यहीं एक विचारणीय तथ्य यह भी आता है कि सबको सच का आईना दिखाने वाले, बिना किसी भूमिका के भयमुक्त कथन करने वाले, समाज के सत्ताधीशों चाहें धार्मिक हों, सामाजिक या राजनीतिक, को पूरी ठसक के साथ आईना दिखाने वाले भक्त कवियों खासकर कबीर जैसे तेजस्वी और अक्खड़ व्यक्ति को यही जनसमुदाय अपना स्टार[1] कैसे मान लेता है? अब यह कहना तो कठिन है कि बिना जनसमुदाय के समर्थन के कबीर जैसा व्यक्तित्व बन सकता है और अपना पूरा जीवन जी भी सकता है। तब जबकि आज के लोकतांत्रिक समाज में भी ऐसे व्यक्ति का जीवन दूभर हो सकता है!

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में जब कबीर होना कठिन जान पड़ता है ऐसे में पंद्रहवीं सदी के साधारण से दिखने वाले इस जुलाहे में ऐसी क्या खास बात थी जो उसे अपने समय और समाज के लोगों का भरपूर सहयोग और समर्थन मिला? खासकर तब जब सत्ता का आतंक ज्यादा प्रत्यक्ष था। और इस व्यक्ति की सारी कवायद स्थापित सत्ता के विरुद्ध थी। कबीर में यह ताकत आती है उनके लोक जुड़ाव से, गहन चिंतन से, व्यावहारिक ज्ञान से, सत्संगति से, अक्खड़ और निडर स्वभाव से, थोड़े में जीवन जीने की आदत से और बिना किसी लाग लपेट के सीधे स्पष्ट कथन से। इन सबके मूल में है उनका गहरे स्तर तक लोक जुड़ाव। कबीर सही मायनों में लोकजीवन के कवि हैं। उनके बारे में हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- "वह मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिंदू होकर भी हिंदू नहीं थे, वह साधु होकर भी साधु नहीं (गृहस्थ) थे, वह वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे। वह कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गए थे। वह भगवान की नरसिम्हावतार की मानव-प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भांति वह नाना असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन-बिंदु पर अवत्तीर्ण हुए थे। ... कबीरदास ऐसे ही मिलन-बिंदु पर खड़े थे, जहां से एक ओर तो हिंदुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्वय जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी और अशिक्षाय वहां पर एक ओर योग-मार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्ति मार्गय जहां एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना। उसी प्रशस्त चौराहे पर वह खड़े थे। वह दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के दोष गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। यह कबीरदास का भगवत दत्त सौभाग्य था। उन्होंने इसका खूब उपयोग भी